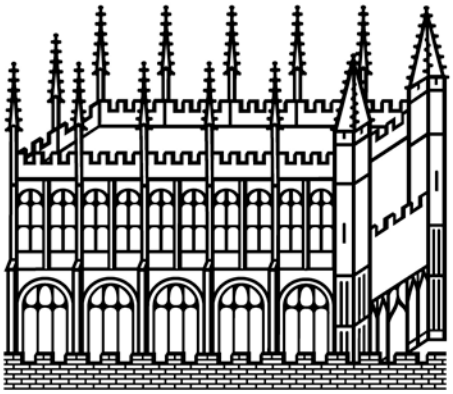

Bodleian Libraries

UNIVERSITY OF OXFORD

This book is part of the collection held by the Bodleian Libraries and scanned by Google, Inc. for the Google Books Library Project.

For more information see:

http://www.bodleian.ox.ac.uk/dbooks

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 2.0 UK: England & Wales (CC BY-NC-SA 2.0) licence.

Hindi

17a

Hindi

Hindi Manu 1

(13 A 67)

मानव धर्मसार

MÁNAVA-DHARMASÁRA;

अर्थात् मनुस्मृति का संक्षेप संस्कृत और भाषा में

OR THE

ORDINANCES OF MANU,

COMPRISING THE INDIAN SYSTEM OF DUTIES.

ABRIDGED AND TRANSLATED INTO HINDI FROM THE ORIGINAL SANSKRIT

BY RÁJÁ SIVAPRASÁD, C.S.I.,

Fellow of the University of Calcutta, and Inspector, Dept. of Public Instruction, 3rd Circle, N.-W. P.

राजा शिवप्रसाद सितारै हिन्द (३) ने बनाया

"A spirit of sublime devotion, of benevolence to mankind, and of amiable tenderness to all sentient creatures, pervades the whole work."—SIR WILLIAM JONES.

श्रीमन्महाराजाधिराज पश्चिमोत्तरदेशाधिकारी श्रीयुत
नव्वाब लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर की आज्ञानुसार

इलाहाबाद

गवर्नमेंट के छापेख़ाने में छापा गया

सन् १८७४ ई०

1st Edition, 1,500 Copies:
Price per Copy 3 annas.

पहिली बार १,५०० पुस्तकें
मोल फ़ी पुस्तक ≡) आने

मानव धर्मसार

भूमिका

मनुस्मृति हिन्दुओं का मुख्य धर्मशास्त्र है। उसको कोई भी हिन्दू अप्रामाणिक नहीं कह सकता है॥ वेद में लिखा है कि मनु जी ने जो कुछ कहा उसे जीव के लिये औषध समझना। (यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्) और वृहस्पति लिखते हैं कि धर्मशास्त्र रचकों में मनु जी सब से प्रधान और अति मान्य हैं क्योंकि उन्हों ने अपने धर्मशास्त्र में संपूर्ण वेदों का तात्पर्य्य लिया है जो उनके धर्मशास्त्र से विरुद्ध हो उसे कदापि नहीं मानना॥

श्लोक

॥ वेदार्थोपनिबन्द्रृत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् ॥
॥ मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते ॥ १ ॥

यवन म्लेच्छ और इङ्गलण्डीय सुविचक्षण पण्डित भी मानव धर्मशास्त्र को वेद छोड़कर संसार के सारे ग्रन्थों से प्राचीन मानते हैं। और सर विलियम् जोन्स साहिब जो सुप्रिमकोर्ट के प्रख्यात जज्ज थे इसे किसी समय में यूनान और मिसर देश तक प्रचलित जानते हैं॥ खेद की बात है कि हमारे देश वासी हिन्दू कहलाके अपने मानव धर्मशास्त्र को म

जानें। और सारे काम उसके विरुद्ध करें॥ जो वचन ब्राह्मणों ने दान दक्षिणा लेने में अपने उपयोगी समझे उन्हें तो सर्वदा पढ़ाते सुनाते रहे। और जो वचन हम को हमारे धर्म की जड़ जान पड़ते हैं उन्हें मानो मन ही से भुला दिये॥ जिन वचनों को अपने प्रतिकूल पाया उन्हें कह दिया कि केवल सत्य युग के लिये थे कलिकाल वालों को इन से काम ही नहीं। अथवा टीका करके अर्थ पलट दिया कहीं का कहीं॥ और जो वचन अपने प्रयोजनीय और इष्ट साधक देखे उन्हें बतलाया। कि न माने सो हिन्द की जाति से बाहर निकाला गया॥ हमारा बहुत दिनों से बिचार था कि मानव धर्मशास्त्र का संक्षेप करके भाषा में छपवावें। जिस में हमारे देश वासी जो संस्कृत नहीं जानते सहज में उसका अभिप्राय जान सकें॥ पर अब सरकारी पाठशाला के धर्मशास्त्री प्रख्यात पण्डित गुलज़ार जी ने जो संपूर्ण ग्रन्थ को बाबू देबीदयाल सिंह भरथरा के ताल्लुक़ेदार के लिये भाषा करडाला। तो हम को अपना काम सिद्ध करना और भी सुगम हो गया॥ सर विलियम् जोन्स साहिब के अंगरेज़ी भाषान्तर ग्रन्थ से भी सहायता ली। और यह मानव धर्मसार छोटी सी पुस्तक अपने देश वासियों के निमित्त ऐसी रची॥ जिस से उन्हें प्रकट हो जावे कि कौन सा हिन्दुओं का आद्य धर्म है। और जो अब हिन्दू कहलाते हैं उनका कैसा कर्म है॥ धर्म हिन्दुओं का यह उनके आगे है। अब इस पर चलना न चलना उनके हाथ में है॥ और यदि कोई कहे कि भाषान्तर शुद्ध नहीं बनाया अथवा इन श्लोकों को मनु जी ने नहीं बनाया॥ तो साक्षी के लिये विद्यालय बाराणसी पुरी के अति प्रसिद्ध अद्वितीय महान् पण्डित ईश्वरी

दत्त जी पांडे और सखाराम जी भट्ट भट्ट और हीरानन्द जी चतुर्वेदी और रामचन्द्र जी शास्त्री और दुर्गादत्त जी वैय्याकरण की चिट्ठी नीचे छाप दी है। पहली हमारी है दूसरी उसके उत्तर में उन महात्माओं की है॥

स्वस्ति श्रीमत्परम दयाकर कृपासागर सर्वशास्त्रधुरंधर श्री ६ पण्डितबर ईश्वरीदत्त जी पांडे सखाराम जी भट्ट भट्ट हीरानन्द जी चतुर्वेदी रामचन्द्र जी शास्त्री दुर्गादत्त जी वैय्याकरण योग्य शिवप्रसाद का साष्टांग प्रणाम पहुंचे अपरं च मनुस्मृति का संक्षेप करके भाषासहित आप के पास भेजा है सो उसे देखके उसके शुद्धाशुद्ध की व्यवस्था लिख भेजिये किमधिकम्॥

लि० शिवप्रसाद॥

मनुस्मृति का संक्षेप भाषा सहित आपने भेजा सो देखा बहुत शुद्ध है अशुद्ध कहीं कुछ नहीं।

लि० श्रीरामः श्रीईश्वरीदत्तशर्म्मपण्डितानाम्।

लि० सखाराम भट्ट भट्ट।

लि० हीरानन्द पं०।

लि० रामचन्द्र शास्त्री।

लि० दुर्गादत्त शर्म्मा॥

मानव धर्मसार

प्रथम अध्याय ॥

(१) मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ॥
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदम्वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

(१) मनुजी एकाग्रचित्त बैठे हुए थे महर्षियों ने उनके पास जाके और यथान्याय प्रतिपूजा करके कहा ॥ १ ॥

(२) भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥
अन्तरप्रभवानाञ्च धर्म्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

(२) हे भगवान सब वर्णों का और अन्तरप्रभवों का धर्म क्रम से ठीक ठीक हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥

(३) स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ॥
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीन् श्रूयतामिति ॥ ३ ॥

(३) जब उन महात्माओं ने महातेजस्वी मनु जी से यह पूछा तब मनु जी ने उन सब महर्षियों की पूजा करके कहा कि सुनिये ॥ ३ ॥

(४) आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ४ ॥

---

(२) जो ऊंचे वर्ण के पुरुष और नीचे वर्ण की विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हो, उसे अन्तरप्रभव कहते हैं ॥

(४) यह सब जगत पहले तम अर्थात् अंधेरा था न वह जाना गया था न उसका कुछ लक्षण था न वह लक्षण करने के योग्य था न जानने के योग्य था मानो नींद में सोआ हुआ था ॥ ४ ॥

(५) ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तोव्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ५ ॥

(५) फिर तब महाभूतादि अर्थात् पृथ्वी अप तेज वायु आकाशादि से प्रकट है प्रभाव जिसका तम का दूर करनेवाला अव्यक्त स्वयम्भू भगवान इस जगत को व्यक्त अर्थात् प्रकट करता हुआ ॥ ५ ॥

(६) योसावतीन्द्रियग्राह्यस्सूक्ष्मोव्यक्तस्सनातनः ॥
सर्वभूतमयोचिन्त्यस्सएव स्वयमुद्बभौ ॥ ६ ॥

(६) जो भगवान जितेन्द्रियों का ग्राह्य सूक्ष्म अव्यक्त सनातन अचिन्त्य सर्वभूतमय है सोई आप से आप प्रकट हुआ॥ ६ ॥

द्वितीय अध्याय

(७) वेदः स्मृतिस्सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥
एतच्चतुर्विधं प्राहुस्साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

(७) वेद और स्मृति भले लोगों का आचार और अपने आत्मा का प्रिय ये चारों साक्षात् धर्म के लक्षण कहे हैं ॥ १२॥

---

(७) अपने आत्मा का प्रिय अर्थात् जिस बात में अपना अन्तःकरण कोई बुराई न देखे और भला समझे वह साक्षात् धर्म है वेद और विद्या का एक ही अर्थ है जिसे अंगरेज़ी में Knowledge नालेज कहते हैं और स्मृति स्मरण को कहते हैं श्रुति और स्मृति अर्थात् सुना हुआ और स्मरण किया हुआ ॥

(८) पूजयेदशनन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ॥
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

(८) प्रतिदिन भोजन का आदर करे और उसकी निन्दा कभी न करे भोजन को देखकर प्रसन्न होवे और हर्ष करे और ऐसा कहे कि हमको यह भोजन नित्य मिला करे ॥ ५४ ॥

(९) नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥
नचैवात्यशनङ्कुर्य्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ५६ ॥

(९) जूठ किसी को न देना सायंकाल और प्रातः काल के मध्य में भोजन न करना (अर्थात् तीन बेर भोजन न करना) अति भोजन (अर्थात् बहुत भोजन) न करना जूठे मुंह कहीं न जाना ॥ ५६ ॥

---

(८) अर्थात् जैसा भोजन मिले वैसा ही प्रसन्न होके संतोष के साथ खालेवे यह न कहे और न मन में लावे कि खाने को अच्छा नहीं मिला अथवा रूखा फीका है ॥

(९) अर्थात् जो मनुष्य जूठा खाने योग्य नहीं है उसे जूठा न देना अथवा अच्छा कहके जूठा न देना अथवा अच्छा दिया जा सके तो जूठा न देना परंतु डोम चमार इत्यादि जो सदा ही जूठा खाया करते हैं उनको उच्छिष्ट देने में तो कुछ अधर्म नहीं जान पड़ता क्योंकि अन्न नष्ट करने से तो उसका किसी भूखे के मुंह में पड़ जाना ही भला है ॥

(१०) अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् ॥
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

(१०) अति भोजन, आयुष आरोग्य स्वर्ग पुण्य इन सबों को हित नहीं है और लोक में निन्दित है इसलिये अति भोजन नहीं करना ॥ ५७ ॥

(११) वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥

(११) स्त्रियों का विवाह यही वैदिक संस्कार है पति की सेवा यही गुरुकुल में वास है गृह का काम काज यही अग्नि की सेवा है ॥ ६७ ॥

(१२) ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोस्सदा ॥
संहत्य हस्तावध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१ ॥

(१२) प्रतिदिन पाठ के आरंभ में और समाप्ति में अपने दोनों हाथ से गुरु के दोनों पैर को ग्रहण करे और दोनों हाथ जोड़ के पाठ पढ़े हाथ का जोड़ना ब्रह्माञ्जलि कहाती है ॥ ७१ ॥

(१३) अध्येष्यमाणन्तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ॥
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामेऽस्त्विति चारमेत् ॥ ७३ ॥

---

(११) अर्थात् व्याही हुई स्त्रियों का यही धर्म है कि पति की सेवा करें और घर का काम काज ॥

(१२) अर्थात् जिस से पाठ पढ़े उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करे और उसे पूज्य समझे ॥

(१३) शिष्यों के पढ़ाने के समय में गुरु ऐसा बोले कि अधीष्व भो (अर्थात् पढ़ो) तब शिष्य पढ़े और जब कहे कि विरामोस्तु (अर्थात् बस करो) तब शिष्य चुप रहे इसका तात्पर्य्य यह है कि गुरु की आज्ञा से पढ़े और चुप रहे ॥ ७३ ॥

(१४) इन्द्रियाणाम्विचरताम्विषयेष्वपहारिषु ॥
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

(१४) विषयों से इन्द्रियों को रोके जैसे सारथी कुचाल से घोड़ों को रोकता है ॥ ८८ ॥

(१५) श्रोचन्त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥
पायूपस्थं हस्तपादम्वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

(१५) श्रोच त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका पायु उपस्थ हस्त पाद वाणी ॥ ९० ॥

(१६) बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोचादीन्यनुपूर्वशः ॥
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषाम्पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥

(१६) इन सबों में पहिली पांच ज्ञान इन्द्रिय कहाती हैं दूसरी पांच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं ॥ ९१ ॥

(१७) एकादशम्मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चको गणो ॥ ९२ ॥

---

(१३) अर्थात् जो काम करे सो गुरु की आज्ञानुसार करे ॥
(१४) हम नहीं जानते कि जो लोग हिन्दू कहलाते हैं वे मनु जी के इस वचन पर क्यों नहीं ध्यान देते ॥

(१७) ग्यारहवां मन है अपने गुण करके दोनों (अर्थात् पांच ज्ञान इन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय) कहाती हैं मन के जीतने से ये सब दसों जीती जाती हैं ॥ ९२ ॥

(१८) इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिन्नियच्छति ॥ ९३ ॥

(१८) इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और इन्द्रियों का निग्रह करे (अर्थात् विषयों में न लगावे) तो जीव सिद्धि को पाता है ॥ ९३ ॥

(१९) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥

(१९) जिस वस्तु में मन की इच्छा है उस वस्तु के मिलने से मन को तृप्ति हो सो कभी नहीं होती जैसे घी को पाके अग्नि बढ़ती ही है ॥ ९४ ॥

(२०) यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैमान् केवलांस्त्यजेत् ॥
प्रापणात्सर्वकामानाम्परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥

(२०) जिस मनुष्य को मन का इच्छित पदार्थ सब मिलता है और जो मिले हुए पदार्थों को त्याग करता है इन दोनों में त्याग करनेवाला बड़ा है ॥ ९५ ॥

---

(१८) धन्य हैं वे महात्मा पुरुष जो इन्द्रियों का निग्रह करते हैं जो लोग केवल नाम के ब्राह्मणों को दही पेड़े खिलाके सिद्धि को ढूंढ़ते हैं उन्हें मनु जी के इस वचन को अच्छी तरह पढ़ना चाहिये ॥

(१९) अर्थात् सांसारिक वस्तु की इच्छा करना वृथा है ॥

(२१) न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया ॥
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥

(२१) विषयों की सेवा न करने से उनका ऐसा त्याग नहीं होता जैसा ज्ञान से होता है ॥ ९६ ॥

(२२) वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिङ्गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ९७ ॥

(२२) जिसका स्वभाव दुष्ट है उसको वेद दान यज्ञ नियम तप ये सब भी सिद्धि को नहीं दे सक्ते ॥ ९७ ॥

(२३) श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

(२३) जो मनुष्य सुनके छूके देखके भोग करके सूंघके न हर्ष को पाता है और न इसके बिना शोक को पाता सो जितेन्द्रिय कहाता है ॥ ९८ ॥

(२४) इन्द्रियाणान्तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेःपात्रादिवोदकम् ॥ ९९ ॥

(२४) सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय अपने विषय में लगी तो जीव की बुद्धि जाती रहती है जैसे मशक में एक छेद होने से भी पानी निकल जाता है ॥ ९९ ॥

(२५) वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ॥
सर्वान्संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

---

(२२) अर्थात् सुभाव का दुष्ट होना बहुत ही बुरा है इस लिये मनुष्य अपना स्वभाव अच्छा रखने का बड़ा यत्न करे ॥

(२५) उपाय से सब इन्द्रियों को और मन बस करके जिस में शरीर को दुःख न होने पावे ऐसी रीति से सब अर्थों को सिद्ध करे ॥ १०० ॥

(२६) नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः ॥
जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोक आचरेत् ॥ ११० ॥

(२६) बिना पूछे कोई बात किसी को न कहना अन्याय से पूछे तो भी न कहना जानता हुआ भी बुद्धिमान् लोक में जड़ की नाईं रहे ॥ ११० ॥

(२७) शय्याऽऽसनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ॥
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाऽभिवादयेत् ॥ ११६ ॥

(२७) बड़े लोग जिस आसन पर वा जिस शय्या पर बैठे हों उस पर न बैठे और आप शय्या अथवा आसन पर बैठा हो तो उठके बड़े लोगों को प्रणाम करे ॥ ११६ ॥

(२८) अभिवादनशीलस्य नित्यम्वृद्धोपसेविनः ॥
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥

(२८) जो मनुष्य बड़े (अर्थात् बूढ़े) लोगों को नित्य प्रणाम करता है और सेवा करता है उसके विद्या आयुष यश बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥

(२६) ब्राह्मणङ्कुशलम्पृच्छे त्क्षत्रबन्धुमनामयम् ॥
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेवच ॥ १२७ ॥

(२६) ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से क्षेम शूद्र से आरोग्य पूछना चाहिये ॥ १२७ ॥

(३०) मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥
असावहमिति ब्रूयात्तत्पूज्याय यवीयसः ॥ १३० ॥

(३०) मामा चाचा श्वशुर ऋत्विज् (अर्थात् यज्ञ करानेवाला) गुरु ये सब अपने वय से छोटे भी हों तो उनको मैं अमुक हूं ऐसा कहकर उठके प्रणाम करे ॥ १३० ॥

(३१) मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ॥
सम्पूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्य्यया ॥ १३१ ॥

(३१) मौसी मामी सास फुफी ये सब गुरु की स्त्री के सम हैं इसलिये गुरु की स्त्री की नाईं इन सब की पूजा करना उचित है ॥ १३१ ॥

(३२) भ्रातुर्भार्य्यापसङ्ग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ॥
विप्रोष्य तूपसङ्ग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥ १३२ ॥

(३२) बड़े भाई की जो सवर्णा स्त्री है (अर्थात् दूसरे वर्ण की नहीं है) उसको पैर छूके नित्य प्रणाम करना और जाति संबंध की जो स्त्री है उसको विदेश से आके पैर छूके प्रणाम करना अपने देश में रहे तब पैर को न छूवे प्रणाम मात्र करे ॥ १३२ ॥

(३३) पितुर्भगिन्याममातुश्च ज्यायस्याश्च स्वसर्यपि ॥
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ १३३ ॥

(३३) फुफी मौसी बड़ी बहन इन सब को माता के समान जानना यद्यपि माता इन सबों से बड़ी है ॥ १३३ ॥

(३४) दशाब्दाख्यम्पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यञ्कुलामृताम् ॥
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥ १३४ ॥

(३४) एक ग्राम वा एक पुर का रहनेवाला गुण से रहित हो और दश बर्ष जेठा हो तो उसके साथ मिचता का व्यवहार होता है और गुणी हो पांच बर्ष जेठा हो तो भी मिचता ही का व्यवहार होता है और वेद पढ़ा हो तीन बर्ष जेठा हो तो मिचता ही होती है और संबंध में हो तो थोड़े ही काल में मिचता होती है सर्वच जो काल कह आये हैं उसके ऊपर ज्येष्ठता का व्यवहार होता है ॥ १३४ ॥

(३५) वित्तम्बन्धुर्वयः कर्म्म विद्या भवति पञ्चमी ॥
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥

(३५) द्रव्य बन्धु वय कर्म विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं इस में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर बड़ा है ॥ १३६ ॥

(३६) पञ्चानान्त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ॥
यत्र स्युः सोत्र मानार्हः शूद्रोपि दशमीङ्गतः ॥ १३७ ॥

(३६) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जिस में इन पांचों से जितनी अधिक वस्तु रहे वही उतना मान के योग्य है नब्बे बर्ष के ऊपर बय हो तो शूद्र भी मान के योग्य है ॥ १३७ ॥

(३७) चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियः ॥
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥ १३८ ॥

---

(३५) अर्थात् विद्या सब से बड़ी है और विद्यावान् पुरुष सब से अधिक मान्य है ॥

(३६) यदि वैश्य विद्वान् हो तो वह मूर्ख ब्राह्मण से अधिक मान्य होगा ॥

(३७) जो रथ पर चढ़ा है और जो नब्बे बर्ष के ऊपर का वयवाला है जो रोगी है जो बोझ लिये है जो स्त्री है जो ब्रह्मचारी है जो राजा है जो विवाह करने के लिये जाता है इन सब के लिये राह छोड़ देनी (अर्थात् इन सबों में से कोई एक ओर से आता हो और उसके समीप दूसरी ओर से कोई आता हो तो वह राह छोड़ देवे इन सबों के जाने के लिये) ॥ १३८ ॥

(३८) उपाध्यायान्दशाचार्य्य आचार्य्याणां शतम्पिता ॥
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणाऽतिरिच्यते ॥ १४५ ॥

(३८) उपाध्याय से दश गुण आचार्य्य बड़ा है आचार्य्य से सौ गुण पिता बड़ा है पिता से हज़ार गुण माता बड़ी है ॥ १४५ ॥

(३९) ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥
बालोपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्म्मतः ॥ १५० ॥

(३९) अपने वय से छोटा है और पढ़ाता है और धर्म्म को सिखलाता है तो वह भी गुरु कहाता है ॥ १५० ॥

(४०) अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः ॥
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥ १५१ ॥

(४०) अंगिरा के लड़के ने अपने चचाओं को पढ़ाया और बेटा ऐसा कहा क्योंकि ज्ञान में वह बड़ा था इसलिये ॥ १५१ ॥

---

(३७) धन्य हैं वे जो इस वचन को मानते हैं और पिता माता की सेवा करते हैं ॥

(४१) अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥१५३॥

(४१) क्योंकि जो कुछ नहीं जानता वही बालक है और जो मंत्र देता है वही पिता है ॥ १५३ ॥

(४२) न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥
ऋषयश्चक्रिरे धर्म्मं योऽनूचानः स नो महान्॥ १५४ ॥

(४२) वर्ष और केश का पकना द्रव्य और बंधु इन सबों से मनुष्य बड़ा नहीं होता ऋषि लोगों ने यही धर्म कहा है कि हम सब में पढ़ानेवाला जो है सोई बड़ा है॥ १५४ ॥

(४३) न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥
यो वै युवाप्यधीयानस्तन्देवाः स्थविरम्बिदुः ॥ १५६ ॥

(४३) केश के पकने से वृद्ध नहीं कहलाता है युवा है और पढ़ा है तो उसको देवताओं ने वृद्ध कहा है ॥ १५६ ॥

(४४) अहिंसयैव भूतानां कार्य्यं श्रेयोनुशासनम् ॥
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥ १५६॥

(४४) जिस में किसी जीव को पीड़ा न हो ऐसा कल्याण करने वाला जो कर्म्म उस कर्म्म की आज्ञा देनी चाहिये और मधुर चिक्कण वाणी बोलनी चाहिये धर्म की इच्छा करने-वाले को ॥ १५६ ॥

(४५) यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ॥
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतम्फलम् ॥ १६० ॥

(४५) जिसकी वाणी और मन शुद्ध है और सर्व काल में रक्षित है सो ही वेदांत के फल को पाता है ॥ १६० ॥

(४६) नारुन्तुदःस्यादार्तोपि न परद्रोहकर्म्मधीः ॥
यथास्योद्विजते वाचा नालोक्यान्तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

(४६) दुःखित हो तो भी ऐसी बात न बोले कि जिस से किसी को मर्म घाव हो दूसरे के द्रोह कर्म में बुद्धि को न रखे जिस बात से किसी के जीव को उद्वेग हो ऐसी बात न बोले ॥ १६१ ॥

(४७) सन्मानाद् ब्राह्मणोनित्यमुद्विजेत बिषादिव ॥
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १६२ ॥

(४७) सन्मान से ब्राह्मण डरता रहे बिष की नाईं और अपमान की इच्छा करे अमृत की नाईं ॥ १६२ ॥

(४८) वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धम्माल्यं रसान् स्त्रियः ॥
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनाञ्चैव हिंसनम् ॥ १७७ ॥

(४८) मधु मांस गंध माला रस स्त्री और शुक्त (अर्थात् जो स्वभाव से मधुर है काल पाके खट्टा हो जावे) प्राणियों का मारना॥१७७॥

---

(४७) खेद की बात है कि अब के ब्राह्मण इस वचन पर कुछ भी ध्यान नहीं करते ॥

(४८) यह वचन और जो आगे लिखे जाते हैं ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी के लिये हैं जब कि वह गुरु के यहां पढ़ता हो ॥ मधु मांस इत्यादि का त्याग इस कारण कहा कि जिस में इन्द्रियां प्रबल न हों नहीं तो फिर पढ़ने में काहे को जी लगेगा और जूते छाते इत्यादि का त्याग इस कारण कहा कि जिस में उसे धूप में चलने का अभ्यास हो और निरा सुकुमार न बनजावे नहीं तो फिर उस से कुछ काम काहे को हो सकेगा ॥

(४६) अभ्यङ्गमञ्जनञ्चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥
कामङ् क्रोधञ्च लोभञ्च नर्तनङ्गीतवादनम् ॥ १९८ ॥

(४६) अबटन काजल जूता छाता काम क्रोध लोभ नांच गीत बाजा ॥ १९८ ॥

(५०) द्यूतञ्च जनवादञ्च परिवादन्तथाऽनृतम् ॥
स्त्रीणां सम्प्रेक्षणालम्भमुपघातम्परस्य च ॥ १९९ ॥

(५०) जूआ झगड़ा पराये का झूठा दोष कहना स्त्रियों को देखना उन से मिलना पराये का नाश इन सब बातों से बचा रहे ॥ १९९ ॥

(५१) नित्यमुद्धृतपाणिःस्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ॥
आस्यतामितिचोक्तस्सन्नासीताभिमुखङ्गुरोः ॥ १९३ ॥

(५१) ओढ़ने का जो कपड़ा है उसके बाहर दहने हाथ को सदा निकाले रहे साधु की नाईं आचार सहित रहे चंचलता को छोड़ दे बैठे ऐसी आज्ञा गुरु की हो तब उनके सन्मुख बैठे ॥ १९३ ॥

(५२) हीनान्नवस्त्रवेषःस्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
उत्तिष्ठेत्प्रथमञ्चास्य चरमञ्चैव सम्विशेत् ॥ १९४ ॥

(५२) गुरु के समीप सर्वकाल में हीन अन्न और हीन वस्त्र से और हीन स्वरूप से रहे (अर्थात् जैसा अन्न गुरु भोजन करें

---

(५२) बड़े खेद की बात है कि अब लोग इस प्रकार गुरु के घर रखके अपने लड़कों को नहीं पढ़ाते आगे श्रीकृष्णचंद्र इत्यादि ने भी इसी ढब से विद्या उपार्जन की थी ॥

उस से निकृष्ट अन्न भोजन करे और जैसा वस्त्र गुरु पहने उस से निकृष्ट वस्त्र आप पहने और (जैसा स्वरूप गुरु बनाये रहें उस से निकृष्ट स्वरूप अपना बनाये रहे) गुरु के जागने के पहले जागे और गुरु के सोने के पीछे सोवे ॥ १६४ ॥

(५३) प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ॥
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः ॥ १६५ ॥

(५३) सोता आसन पर बैठा भोजन करता और विमुख (अर्थात् मुख फेरे) गुरु से न बोले और गुरु की बात न सुने किन्तु ॥ १६५ ॥

(५४) आसीनस्य स्थितः कुर्य्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥ १६६ ॥

(५४) गुरु बैठे हों तो आप खड़ा होकर गुरु खड़े हों तो आप उनके साम्हने आनकर गुरु आते हों तो सन्मुख जाकर और गुरु दौड़ते हों तो आप भी पीछे दौड़कर बोले और बात को सुने ॥ १६६ ॥

(५५) पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्येत्य चान्तिकम् ॥
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ १६७ ॥

(५५) गुरु विमुख हों तो उनके सन्मुख जाके और दूर हों तो समीप जाके और सोए हों तो प्रणाम करके आज्ञा को सुने ॥ १६७ ॥

(५६) नीचं शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १६८ ॥

(५६) गुरु के समीप अपनी शय्या और आसन नीचे रखे गुरु के देखते हुए जैसा चाहे तैसा आसन करके न रहे (अर्थात् गुरु के साम्हने पांव फैलाके अथवा सहारा लगाके न बैठे) ॥ १६८ ॥

(५७) नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ १९९ ॥

(५७) गुरु के पीछे भी केवल उनके नाम को न लेवे और गुरु के गमन भाषण चेष्टा की नाईं आप यह तीनों कर्म न करे ॥१९९॥

(५८) गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ॥
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यम्वा ततोन्यतः ॥२००॥

(५८) जहां गुरु का सच्चा वा झूठा दोष कहा जाता हो वा निन्दा होती हो तहां कान मूंदना अथवा वहां से उठ जाना ॥ २०० ॥

(५९) दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ॥
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥ २०२ ॥

(५९) गुरु की पूजा दूर से (अर्थात् किसी से पूजा की सामग्री भेज के) न करनी और क्रुद्ध होके न करनी अपनी स्त्री के समीप हों तो भी न करनी आप सवारी पर हो वा आसन पर बैठा हो तो सवारी से उतर के और आसन को छोड़ के प्रणाम करे ॥ २०२ ॥

(६०) विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ॥
प्रतिषेधत्सुचाधर्मान् हितञ्चोपदिशत्स्वपि ॥ २०६ ॥

(६०) इसी प्रकार से आचार्य्य को छोड़ कर उपाध्याय आदि जो दश गुरु हैं और संबंधी जो चचा आदि हैं और जो अधर्म्म से बचाते हैं और जो हित बात का उपदेश करते हैं उन सब से सदा गुरु की नाईं सारा व्यवहार रखे ॥ २०६ ॥

---

(६०) हे परमेश्वर फिर भी कभी ऐसा दिन आवेगा कि हमारे स्वदेशी इस प्रकार अपने गुरु को मानेंगे और उनकी सेवा करेंगे ॥

(६१) श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ॥
गुरुपुत्रेषु चार्य्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ २०७ ॥

(६१) जो बड़े लोग हैं और श्रेष्ठ जो गुरुपुत्र हैं और जो गुरु के बंधुजन हैं इन सब से गुरु की नाईं आचरण करे ॥ २०७ ॥

(६२) बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्म्मणि ॥
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥ २०८ ॥

(६२) गुरु का पुत्र अपने से वय में छोटा हो अथवा समान हो अथवा शिष्य हो और पढ़ाने में समर्थ हो तो यज्ञकर्म में उसका मान गुरु की नाईं करना चाहिये ॥ २०८ ॥

(६३) स्वभाव एषां नारीणां नराणामिह दूषणम् ॥
अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ २१३ ॥

(६३) मनुष्यों को दूषित करना यह नारियों का स्वभाव ही है इसलिये पण्डित लोग नारी के विषय में सावधानता से रहते हैं ॥ २१३ ॥

(६४) अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥
प्रमदा ह्युत्पथन्नेतुङ्कामक्रोधवशानुगम् ॥ २१४ ॥

(६४) काम क्रोध सहित हो पंडित हो चाहे मूर्ख हो उसे निषिद्ध राह पर ले जाने को स्त्री समर्थ हैं ॥ २१४ ॥

(६५) माचा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ २१५ ॥

(६५) माता भगिनी लड़की इन सबों के साथ भी एकांत में न रहना इन्द्रिय सब बलवान् हैं पण्डितों को भी खींचती हैं ॥ २१५ ॥

(६६) यथा खनन् खनित्रेण नरोवार्य्यधिगच्छति ॥
तथा गुरुगताम्विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ २१८ ॥

(६६) जिस प्रकार कुदारी से खोदते २ जल को मनुष्य पाता है तिसी प्रकार सेवा करते २ गुरु की संपूर्ण विद्या को शिष्य पाता है ॥ २१८ ॥

(६७) यदि स्त्री यदवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् ॥
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यच्च वास्य रमेन्मनः ॥ २२३ ॥

(६७) स्त्री अथवा छोटा मनुष्य कोई अच्छी बात करता हो तो उस बात को ग्रहण करे जो कर्म्म शास्त्र से अविरुद्ध है उस में पुरुष का मन संतुष्ठ हो सो करे ॥ ॥ २२३ ॥

(६८) धर्म्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म्म एव च ॥
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥ २२४ ॥

(६८) किसी के मत में धर्म और अर्थ यह दोनों कल्याण करनहार हैं किसी के मत में अर्थ और काम कल्याण करनहार हैं किसी के मत में धर्म्म कल्याण करनहार है अब अपना मत कहते हैं कि धर्म्म अर्थ काम ये तीनों परस्पर अविरुद्ध हैं ॥ २२४ ॥

(६९) आचार्य्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २२६ ॥

(६९) आचार्य्य पिता जेठा सहोदर भाई इन तीनों का अपमान आप दुःखित हो तौ भी न करे ब्राह्मण को तो अवश्य यह बात चाहिये ॥ २२६ ॥

---

(६८) अर्थात् धर्म्म के साथ अर्थ काम यह दोनों भी प्राप्त हो सकते हैं इनका परस्पर विरोध नहीं है ॥

(७०) यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ॥
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुम्वर्षशतैरपि ॥ २२७ ॥

(७०) मनुष्य के उत्पत्ति समय में जो क्लेश माता पिता सहते हैं उस से मनुष्य सब वर्ष में भी उरिण नहीं हो सकता (इसलिये ये देवता रूप हैं इनका अपमान कदापि न करना चाहिये) ॥ २२७ ॥

(७१) तयोर्नित्यम्प्रियङ्कुर्य्यादाचार्य्यस्य च सर्वदा ॥
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २२८ ॥

(७१) माता पिता आचार्य्य इन तीनों का प्रिय नित्य ही करना इन तीनों के संतुष्ट होने से सब तपस्या समाप्ति होती है ॥ २२८ ॥

(७२) तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ॥
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्म्ममन्यं समाचरेत् ॥ २२९ ॥

(७२) इन्हीं तीनों की सेवा परम तप है इन्हों की आज्ञा बिना कोई दूसरा धर्म्म नहीं करना ॥ २२९ ॥

(७३) त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ॥
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोग्नयः ॥ २३० ॥

(७३) तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि ये ही तीनों हैं ॥ २३० ॥

---

(७०) धन्य हैं वे लोग जो इन वचनों को याद रखके माता पिता की सेवा करते हैं ॥

(०४) सर्वे तस्यादृता धर्म्मा यस्यैते त्रय आदृताः ॥
अनादृतास्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याऽफलाःक्रियाः ॥ २३४ ॥

(०४) जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया उसके सब धर्म आदर को पाचुके और जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उसकी सब क्रिया निष्फल हुईं ॥ २३४ ॥

(०५) यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषाङ्कुर्य्यात्प्रियहिते रतः ॥ २३५ ॥

(०५) जब तक ये तीनों जीते रहें तब तक स्वतंत्र होकर दूसरा धर्म न करे इन्हीं की सेवा और इन्हीं के हित और प्रिय को करता रहे ॥ २३५ ॥

(०६) श्रद्दधानःशुभाम्विद्यामाददीतावरादपि ॥
अन्त्यादपि परन्धर्म्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ २३८ ॥

(०६) श्रद्धा करके विद्या नीच से भी लेनी और परम धर्म्म चंडाल से भी लेना और स्त्री रत्न दुष्ट कुल से भी लेना ॥ २३८ ॥

(०७) विषादप्यमृतङ् ग्राह्यम्बालादपि सुभाषितम् ॥
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ २३९ ॥

(०७) विष बालक शत्रु अपवित्र इन सबों से क्रम करके अमृत सुंदर वचन सुंदर आचरण सुवर्ण इन सब को ग्रहण करना ॥ २३९ ॥

---

(०७) अर्थात् बालक और शत्रु भी अच्छी बात कहें अथवा अच्छा काम करें तो उसे ग्रहण करना अनादर कदापि न करना ॥

(७८) स्त्रियोरत्नान्यथो विद्या धर्म्मः शौचं सुभाषितम् ॥
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२४० ॥

(७८) स्त्री रत्न विद्या धर्म पवित्रता सुंदर वचन और नाना प्रकार की कारीगरी इन सब को जहां से मिले वहां से लेना ॥ २४० ॥

(७९) अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनङ्गुरोः ॥ २४१ ॥

(७९) आपतकाल आके पड़े तो क्षत्रिय आदि से ब्राह्मण पढ़े जब तक पढ़े तब तक उस गुरु के पीछे चले और सेवा करे ॥ २४१ ॥

॥ तृतीय अध्याय ॥

(८०) पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ॥
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥

(८०) बहुत कल्याण की इच्छा करनेवाले जो पिता भाई पति देवर हैं सो सब वस्त्र और आभूषण से स्त्रियों की पूजा करें ॥५५॥

(८१) यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥

(८१) जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल में देवता रमण करते हैं और जहां स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां सब क्रिया निष्फल होती हैं ॥ ५६ ॥

(८२) शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥

(८२) जिस कुल में स्त्री शोक करती हैं वह कुल झट पट नष्ट हो जाता है और जिस कुल में स्त्री शोक नहीं करता हैं वह कुल सदा बढ़ता है ॥ ५७ ॥

---

(८०) अर्थात् स्त्रियों को प्रसन्न रखें ॥

(८१) अर्थात् स्त्रियों का अपमान कदापि न करना चाहिये ॥

(८३) जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८ ॥

(८३) पूजा विना पाये स्त्री जिस कुल को शाप देती हैं वह कुल चारों ओर से नष्ट हो जाता है ॥ ५८ ॥

(८४) तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादना शनैः ॥
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

(८४) इसलिये विभूति की इच्छा करनेवाला जो पुरुष है सो वस्त्र और भोजन से सदा स्त्रियों की पूजा करता रहे ॥ ५९ ॥

(८५) सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ॥
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणन्तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥

(८५) जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुल में ध्रुव करके कल्याण है ॥ ६० ॥

(८६) यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ ६१ ॥

(८६) जब स्त्री प्रसन्न नहीं रहती तो पति भी प्रसन्न नहीं रहता और जब पति प्रसन्न नहीं रहता तो संतति भी नहीं होती ॥ ६१ ॥

---

(८२) इससे अधिक स्त्रियों को सुखी और प्रसन्न रखने का और क्या वचन होवेगा,

(८४) अर्थात् स्त्रियों को गहना भोजन वस्त्र सदा देता रहे,

(८५) अर्थात् जहां पति स्त्री में लड़ाई झगड़ा नहीं रहता उसी जगह कल्याण है ॥

(८७) स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम् ॥
तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ९२ ॥

(८७) स्त्री के प्रसन्न रहने से कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है ॥ ९२ ॥

(८८) ससन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्य्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ९९ ॥

(८८) परलोक में अक्षय स्वर्ग की और इस लोक में सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष उस गृहस्थाश्रम को नित्य ही धारण करे जो दुर्बल इंद्रियवालों से धारण नहीं हो सक्ता ॥ ९९ ॥

(८९) नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ॥
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ १० ॥

(८९) भस्मसदृश ब्राह्मण में (अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण में) देवता और पितर के निमित्त जो वस्तु मोह से दाता लोग देते हैं सो सब नष्ट होजाता है ॥ १० ॥

(९०) तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ॥
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १०१ ॥

(९०) तृण भूमि जल और मीठी वाणी इन वस्तुओं से सज्जनों का गृह कभी शून्य नहीं रहता ॥ १०१ ॥

---

(८८) धिक् उन लोगों को जो बाल बच्चों को छोड़कर आलस्यी हो बाहर निकल जाते हैं अथवा छापा तिलक लगा निरुद्यमी हो बैठते हैं और घर घर भीख मांगते फिरते हैं,

(८९) न जानिये लोग फिर क्यों ऐसे मूर्खों को दही पेड़े खिलाते हैं,

(९०) अर्थात् घर आये को जल से पांव धुलाके आसन पर बैठाने और उस से मीठी बात करने में सज्जन पुरुष कभी नहीं चूकते ॥

(६१) अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्य्योढो गृहमेधिना ॥
काले प्राप्त स्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥ १०५ ॥

(६१) सूर्य के अस्त समय में अतिथि आया हो तो उसको भोजन जल अवश्य देना भोजन काल में प्राप्त हो अथवा दूसरे काल में प्राप्त हो परंतु भोजन किये बिना गृह में न रहने देना ॥ १०५ ॥

(६२) न वै स्वयन्तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यञ्चातिथिपूजनम् ॥ १०६ ॥

(६२) जो वस्तु अतिथि को भोजन न करावे उस वस्तु को आप भोजन न करे और अतिथि को भोजन देना यह तो धन यश आयुष स्वर्ग इनका हित करनेवाला है ॥ १०६ ॥

(६३) सुवासिनीः कुमारीश्च गर्भिणीरोगिणी स्त्रियः ॥
अतिथिभ्योग्र एवैता भोजयेदविचारयन् ॥ ११४ ॥

(६३) पतोहू विवाही लड़की छोटा लड़का रोगी गर्भिणी इन सब को अतिथि भोजन के पहिले भोजन देना इस में बिचार न करना ॥ ११४ ॥

(६४) यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलष्टर्ययोगुडान् ॥ १३३ ॥

(६४) देवता और पितरों के अन्न को जे ग्रास मूर्ख ब्राह्मण भोजन करता है ते बार श्राद्ध करनेवाला अग्नि से तप्त शूल और ऋष्टि (अर्थात् दुधारा शस्त्र) और लोह पिण्ड इन सब को भोजन करता है ॥ १३३ ॥

---

(६२) अर्थात् ऐसा न करे कि अच्छा २ तो आप खाजावे और बुरा बुरा अतिथि को देवे,

(६४) न जानें लोग फिर क्यों मूर्ख ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और ब्राह्मण किस कारण लिखने पढ़ने में मन नहीं लगाते ॥

॥ चतुर्थ अध्याय ॥

(९५) चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यगुरौ द्विजः ॥
द्वितीयमायुषो भागङ्कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥

(९५) आयुष के चार भागों में से पहिले में गुरु कुल में जाके बास करे दूसरे भाग में विवाह करके गृह में रहे (इस स्थान में यह संदेह हो सकता है कि आयुष का निश्चित काल परिणाम तो जान नहीं पड़ता चार भाग का पहिला भाग किस प्रकार से जाना जाय कदाचित् कहो कि शत बर्ष के पुरुष होते हैं यह श्रुति में लिखा है तो २५ बर्ष चौथा भाग हुआ तो मनुजी ने छत्तीस बर्ष तक ब्रह्मचर्य्य करना यह कहा है इसके साथ विरोध पड़ेगा इसलिये जब तक ब्रह्मचर्य्य हो सके सोई आयुष का चौथा भाग है) ॥ १ ॥

(९६) सन्तोषम्परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

(९६) परम संतोष को पाके सुखार्थी संयम (अर्थात् इंद्रिय निग्रह) करे क्योंकि सुख का जड़ संतोष है दुःख का जड़ असंतोष है ॥ १२ ॥

(९७) इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत कामतः ॥
अतिप्रसक्तिञ्चैतेषाम्मनसा सन्निवर्तयेत् ॥ १६ ॥

(९७) इच्छा से रूप रस गंध स्पर्श शब्द इन सब में प्रसक्त न होवे इन सब में अति प्रसक्ति को मन से निवृत्ति करे ॥ १६ ॥

---

(९५) ये वचन ब्राह्मणों के लिये हैं ॥

(९८) बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥

(९८) बुद्धि को बढ़ानेवाला जो शास्त्र है और धन को देने वाला जो शास्त्र है और हित करनेवाला जो शास्त्र है इन सब को देखना और वेदार्थ का बतलानेवाला जो ग्रंथ है उसको भी नित्य ही देखना ॥ १९ ॥

(९९) यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥
तथा तथा विजानाति विज्ञानञ्चास्य रोचते ॥ २० ॥

(९९) मनुष्य जैसा जैसा शास्त्र का अभ्यास करता है तैसा तैसा विशेष करके जानता है और उसे ज्ञान भी रुचता है ॥ २० ॥

(१००) न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधाशक्तः कथञ्चन ॥
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥

(१००) समर्थ जो स्नातक (अर्थात् गृहस्थ) है सो भूख से कभी दुःखित न होवे अर्थात् भूखा न रहे और विभव रहते जीर्ण और अस्वच्छ वस्त्र न पहने ॥ ३४ ॥

(१०१) क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥

(१०१) वेदाभ्यास में और अपने हितकर्म में नित्य युक्त रहे और केश नख दाढ़ी इन्हें छोटा किये रहे श्वेत वस्त्र पहने पवित्रता से रहे इन्द्रियों को निग्रह किये रहे ॥ ३५ ॥

(१०२) ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चानु चिन्तयेत् ॥
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥

(१०२) पहर रात्रि रहते उठके धर्म और अर्थ इन दोनों का चिन्तन करे और धर्म अर्थ का जड़ जो शरीर क्लेश है उसको भी चिन्तन करे और वेद का जो तत्व अर्थ है उसको भी चिन्तन करे ॥ ९२ ॥

(१०३) न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥
न वासोभिस्सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १२६ ॥

(१०३) भोजन किये हो और आतुर हो तो स्नान न करे वस्त्र सहित बारंबार भी स्नान न करे अर्द्धरात्र में और जो जलाशय जाना नहीं गया है उस में स्नान न करे ॥ १२६ ॥

(१०४) सत्यम् ब्रूयात्प्रियम् ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥
प्रियञ्च नानृतम् ब्रूयादेष धर्म्मस्सनातनः ॥ १३८ ॥

(१०४) सत्य बोलना प्रिय बोलना सत्य भी हो और प्रिय न हो तो उसको न बोलना प्रिय भी हो और सत्य न हो तो उसको भी न बोलना यह नित्य धर्म है ॥ १३८ ॥

(१०५) हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान् ॥
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ १४१ ॥

(१०५) हीन अंगवाला अधिक अंगवाला मूर्ख वृद्ध कुरूप हीन जाति हीन द्रव्यवाला इन सबों की निंदा न करनी (अर्थात् काणा है तो उसको काणा कहके न पुकारना) ॥ १४१ ॥

(१०६) मङ्गलाचारयुक्तःस्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ॥
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥

(१०६) मंगल आचार से युक्त रहे भीतर बाहर से शुद्ध रहे जितेन्द्रिय होके जप और होम करे आलस्य को छोड़ देवे ॥ १४५ ॥

(१०७) मैचम्प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ॥
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ १५२ ॥

(१०७) विष्ठात्याग देहप्रसाधन (अर्थात् शृंगार आदि) प्रातः स्नान दंतधावन अंजन देवता का पूजन इन सब कर्मों को पूर्वाह्ण काल (अर्थात् दिन के पूर्व भाग) में करना ॥ १५२ ॥

(१०८) अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतःपृष्ठतोन्वियात् ॥ १५४ ॥

(१०८) अपने गृह में आये हुए वृद्धों को प्रणाम करे अपना आसन बैठने के लिये देवे हाथ जोड़ के सन्मुख खड़ा रहे चलने लगें तो पीछे पीछे (कुछ दूर) आप भी चले ॥ १५४ ॥

(१०९) आचार्यञ्च प्रवक्तारम् पितरम्मातरङ् गुरुम् ॥
न हिंस्याद्ब्राह्मणान् गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥ १६२ ॥

(१०९) आचार्य वेदाध्याय का कहने वाला पिता माता गुरु ब्राह्मण गौ तपस्वी इन सब में से किसी को भी न मारे ॥ १६२ ॥

(११०) नास्तिक्यम्वेदनिन्दाञ्च देवतानाञ्च कुत्सनम् ॥
द्वेषन्दम्भञ्च मानञ्च क्रोधन्तैक्ष्ण्यञ्च वर्जयेत् ॥ १६३ ॥

(११०) नास्तिकपना और वेद और देवताओं की निन्दा और शठता और दंभ और मान और क्रोध और तीक्ष्णता इनसब को न करना ॥ १६३ ॥

(१११) परस्य दण्डन्नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ॥
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थन्ताडयेत्तु तौ ॥ १६४ ॥

(१११) क्रोध पाके दूसरे के मारने के लिये लाठी न चलावे और न दूसरे को किसी प्रकार से मारे परंतु पुत्र और शिष्य इन दोनों को सिखाने के लिये ताड़ना करे ॥ १६४ ॥

---

(१०९) गौ से इस देश में बड़े काम निकलते हैं अत एव रक्षा के योग्य है ॥

(११०) जो लोग हिन्दू कहलाते हैं उनको यह श्लोक सदा स्मरण रखना चाहिये ॥

(१११) काशी के कितने ही हिन्दुओं ने इसका अर्थ विपरीत समझ रक्खा है क्योंकि उनका कर्म्म विपरीत दिखलाई देता है पंडितों को चाहिये कि इन महा पुरुषों को सीधा अर्थ समझा देवें ॥

(११२) नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १०२ ॥

(११२) अधर्म शीघ्र ही नहीं फलता गो (अर्थात् पृथ्वी) की नाईं (जैसे पृथ्वी बीज बोने से शीघ्र फल नहीं देती किंतु काल पाके देती है) अधर्म करनेवाले का धीरे धीरे सर्व नाश हो जाता है ॥ १०२ ॥

(११३) अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ १०४ ॥

(११३) अधर्म करनेवाला पहिले बढ़ता है फेर कल्याण को देखता है फेर शत्रुओं को जीतता है पश्चात् मूल सहित नाश हो जाता है ॥ १०४ ॥

(११४) सत्यधर्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ १०५ ॥

(११४) भले लोगों का आचार सत्य धर्म पवित्रता इन सब में सर्वकाल रति करे भार्या पुत्र दास छात्र इन सब को धर्म से शासन (अर्थात् ताड़न) करे वाणी बाहु उदर इनका संयम करे (वाणी का संयम सत्य भाषण से होता है बाहू के बल से किसी को पीड़ा न देवे तब बाहु का संयम होता है जो कुछ थोड़ा सा मिल जाय उसी के भोजन से संतुष्ट रहने से उदर का संयम होता है) ॥ १०५ ॥

---

(११३) अर्थात् अधर्म करनेवाला चाहे जितना बढ़े परंतु अन्त उसका बुरा है मूल सहित नाश हो जावेगा ॥

(११५) परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातान्धर्म्मवर्जितौ ॥
धर्मञ्चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ १७६ ॥

(११५) धर्म से वर्जित जो अर्थ काम है उसका त्याग करना और जो धर्म से वर्जित नहीं है परंतु लोक से बिरुद्ध है और आनेवाले काल में दुःख का देनेवाला है उसका भी त्याग करना ॥ १७६ ॥

(११६) न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ॥
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥ १७७ ॥

(११६) हाथ पांव आंख वाणी इन सब को चंचल न रखे टेढ़ा न रहे परद्रोह कर्म में बुद्धि को न लगावे ॥ १७७ ॥

(११७) प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गन्तच वर्जयेत् ॥
प्रतिग्रहेण तस्याशु ब्राह्मन्तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥

(११७) दान लेने में समर्थ हो तौ भी न लेवे दान लेने से ब्रह्मतेज शांत होता है ॥ १८६ ॥

(११८) हिरण्यम्भूमिमश्वङ्गामन्नम्वासस्तिलान् घृतम् ॥
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् ॥ १८८ ॥

(११८) स्वर्ण भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल घृत इन सब में से कोई एक वस्तु को प्रतिग्रह करने से मूर्ख ब्राह्मण लकड़ी की नाईं भस्म हो जाता है ॥ १८८ ॥

---

(११८) हमारी जान में जब मूर्ख ब्राह्मण यह सब देने से भस्म होता है तो देनेवाले को भी पाप लगेगा क्योंकि ब्राह्मण का भस्म करना कदापि श्रेय नहीं जो लोग घाटिये गंगा पुत्र गया वाल और पंडों को दान देते हैं उन्हें इस वचन पर ध्यान भी रखना चाहिये ॥

(११९) अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥ १९० ॥

(११९) तप और वेद से रहित है प्रतिग्रह में रुचि रखता है ऐसा ब्राह्मण दाता सहित डूबता है जैसे जल में पत्थर की नौका ॥ १९० ॥

(१२०) न वार्य्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे ॥
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ १९२ ॥

(१२०) वैडालव्रतिक और बकव्रतिक और मूर्ख इन तीनोंब्राह्मणों को धर्म जाननेवाला पुरुष जल माच भी न देवे ॥ १९२ ॥

(१२१) चिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितन्धनम् ॥
दातुर्भवत्यनर्थाय परचादातुरेव च ॥ १९३ ॥

(१२१) विधि से अर्जित धन जो इन तीनों को देवे तो परलोक में वह दानदाता और प्रतिग्रहीता दोनों के अनर्थ का हेतु होता है ॥ १९३ ॥

(१२२) यथा प्लवेनोपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥

(१२२) जिस प्रकार से पत्थर की बनाई हुई नाव पर चढ़कर जल में डूबता है उसी प्रकार से दाता और प्रतिग्रहीता दोनों मूर्ख नरक में डूबते हैं ॥ १९४ ॥

---

(११९) जो लोग लौकिक में नाम पाने के निमित्त इस काल के ऐसे ब्राह्मणों को कि वेद का एक अक्षर भी नहीं जानते और प्रतिग्रह में जी देते हैं, धन बांटा करते हैं उन्हों ने क्या कभी यह वचन मनु जी का नहीं सुना ॥

(१२२) हे हमारे देस बासियो कान खोलो और इसको सुनो ॥

(१२३) धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छद्मिको लोकदम्भकः ॥
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १९५ ॥

(१२३) धर्मध्वजी (अर्थात् जो नाम पाने के लिये मनुष्यों में अपने को बड़ा धार्मिक प्रसिद्ध करता है) लोभी बहाने से चलनेवाला बंचना करनेवाला घातक (अर्थात् घात करनेवाला) सब की निन्दा करनेवाला ऐसा जो है सो वैडालव्रतिक कहलाता है (अर्थात् बिल्ली की नाईं उसका आचरण है) ॥ १९५ ॥

(१२४) अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥

(१२४) नीचे देखनेवाला (निष्ठुर अर्थात् दया शून्य) अपने अर्थ के साधने में तत्पर टेढ़ा रहनेवाला झूटी नम्रतावाला ऐसा जो है बकव्रतिक कहलाता है (अर्थात् बकुला की नाईं उसका आचरण है) ॥ १९६ ॥

(१२५) ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्म्मणा ॥ १९७ ॥

(१२५) बकव्रतिक वैडालव्रतिक ये दोनों अपने पाप से अंधतामिस्र नाम नरक में जाते हैं ॥ १९७ ॥

(१२६) धर्मं शनैस्सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिका ॥
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥

(१२६) किसी जीव को पीड़ा न होने पावे ऐसी रीति से परलोक के सहाय के लिये धर्म को बटोरे जैसे दीमक वल्मीक (अर्थात् अपनी बांबी) को बटोरती है ॥ २३८ ॥

(१२७) नामुत्र हि सहायार्थंम्पिता माता च तिष्ठतः ॥
न पुत्रदारन्न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३६ ॥

(१२७) माता पिता पुत्र भार्या जाति ये सब परलोक में सहाय के लिये नहीं रहते केवल धर्म ही रहता है ॥ २३६ ॥

(१२८) एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥
एकोनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २४० ॥

(१२८) अकेला ही उत्पन्न होता है अकेला ही लीन होता है अकेला ही सुकृत (अर्थात् पुण्य) को भोग करता है अकेला ही दुष्कृत (अर्थात् पाप) को भोगता है ॥ २४० ॥

(१२९) मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ॥
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्म्मस्तमनु गच्छति ॥ २४१ ॥

(१२९) जब काठ और ढेले के सदृश मृत शरीर को पृथ्वी में त्याग करता है बांधव लोग सब मुंह फेर लेते हैं परंतु धर्म उसके पीछे चला जाता है ॥ २४१ ॥

(१३०) तस्माद्धर्म्मं सहायार्थन्नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ॥
धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ २४२ ॥

(१३०) इसलिये सहाय के अर्थ नित्य ही धीरे २ धर्म को बटोरे धर्म की सहायता से दुस्तर नरक को तरता है ॥ २४२ ॥

(१३१) दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसम्वसन् ॥
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गन्तथाव्रतः ॥ २४६ ॥

(१३१) दृढ़कारी अर्थात् जिस अर्थ का आरंभ किया उस कार्य को समाप्त करनेवाला कोमल स्वभाववाला शीत घाम आदि जो द्वन्द्व हैं उनको सहनेवाला इंद्रियों को विषयों से रोकनेवाला क्रूराचारवाले पुरुषों के साथ संबंध को छोड़नेवाला हिंसा से निवृत्त रहनेवाला दान करनेवाला स्वर्ग को पाता है ॥ २४६ ॥

(१३२) योन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ॥
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥ २५५ ॥

(१३२) जो सज्जनों के मध्य में अपने को छिपाता है अर्थात् जैसा है वैसा नहीं बतलाता सो लोक में बड़ा पाप करने-वाला है और चोर है (अर्थात् अपनी आत्मा को चुराता है) ॥ २५५ ॥

(१३३) वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ॥
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २५६ ॥

(१३३) जितने अर्थ हैं सो सब वाणी में रहते हैं वाणी उन का मूल है वाणी से निकलते हैं उस वाणी को जिसने चुराया (अर्थात् जो झूठ बोला) सो सब वस्तु का चुराने-वाला हुआ ॥ २५६ ॥

॥ पञ्चम अध्याय ॥

(१३४) यो बन्धनवधक्लेशम्प्राणिनान्न चिकीर्षति ॥
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

(१३४) जो सब जीवों को बंधन और वध का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता सो सब का हितकारी है अति सुख को पाता है ॥ ४६ ॥

(१३५) नाकृत्वा प्राणिनां हिंसाम्मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसम्विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

(१३५) प्राणियों की हिंसा बिना, मांस नहीं मिलता और प्राणियों का बध तो स्वर्ग के हित नहीं है इसलिये मांस को त्याग ही करना ॥ ४८ ॥

---

(१३५) अर्थात् मांस न खाना ॥

(१३६) समुत्पत्तिश्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४६ ॥

(१३६) मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का वध और बंधन इन सब को देखकर सर्व मांस का भक्षण त्याग करे ॥ ४६ ॥

(१३७) स्वमांसम्परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ॥
अनभ्यर्च्च पितॄन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

(१३७) पराये के मांस से अपना मांस बढ़ाने की जो पुरुष इच्छा करता है और देव और पितों की पूजा नहीं करता उस से अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

(१३८) अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनस्सत्येन शुध्यति ॥
विद्यातपोभ्याम्भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ १०६ ॥

(१३८) जल से शरीर सत्य से मन ब्रह्म विद्या और तप से भूतात्मा (अर्थात् लिंग शरीर सहित जीवात्मा) ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ॥ १०६ ॥

(१३६) सदा प्रहृष्टया भाव्यङ्गृहकार्य्येषु दक्षया ॥
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ १५० ॥

(१३६) स्त्री सर्वकाल में हृष्ट और गृह कार्य में दक्ष रहे गृह की सब सामग्री सुंदर प्रकार से बनाये रखे और यथा योग्य व्यय करे ॥ १५० ॥

---

(१३६) अर्थात् किसी प्रकार का भी मांस न खावे ॥

(१३७) क्या पण्डितों ने मांस अहारी हिन्दुओं को यह वचन कभी नहीं सुनाया ॥

(१४०) विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्ज्जितः ॥
उपचर्य्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥ १५४ ॥

(१४०) शील से रहित पति हो अथवा दूसरी स्त्री के साथ प्रेम रखता हो किंवा गुणों से वर्जित हो तौ भी जो साध्वी स्त्री हैं सो नित्य ही देवता की नाईं पति की सेवा करें ॥ १५४ ॥

(१४१) नास्ति स्त्रीणाम्पृथग्यज्ञो न व्रतन्नाप्युपोषितम् ॥
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥

(१४१) स्त्रियों का यज्ञ व्रत उपवास पृथक् नहीं है केवल पति की सेवा ही से स्वर्ग में पूजित होती हैं ॥ १५५ ॥

(१४२) पाणिग्राहस्य सा साध्वी जीवतो वा मृतस्य वा ॥
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥ १५६ ॥

(१४२) पति लोक की इच्छा करनेवाली साध्वी स्त्री जीते अथवा मरे हुए पति का अप्रिय कुछ भी काम न करे ॥१५६॥

॥ षष्ठ अध्याय ॥

(१४३) नाभिनन्देत मरणन्नाभिनन्देत जीवितम् ॥
कालमेव प्रतीक्षेत निर्द्देशम्भृतको यथा ॥ ४५ ॥

(१४३) मनुष्य मरण और जीवन इन दोनों में से किसी की भी इच्छा न करे केवल काल ही की प्रतीक्षा में रहे जिस रीति से भृत्य स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है ॥ ४५ ॥

---

(१४३) अर्थात् जो कुछ ईश्वर की इच्छा है उसी में संतुष्ट रहे आप कुछ न चाहे ॥

(१४४) दृष्टिपूतन्यसेत्पादम्वस्त्रपूतञ्जलम्पिबेत् ॥
सत्यपूतान्वदेद्वाचम्मनः पूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

(१४४) (धरती पर) देख के पांव रखे जल को कपड़े से छान के पीये सत्य करके पवित्र वाणी को बोले मन पवित्र रख के सारे काम करे ॥ ४६ ॥

(१४५) अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥
न चेमन्देहमाश्रित्य वैरङ्कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥

(१४५) दूसरे मनुष्यों की बुरी वाणी को सहे किसी का अपमान न करे किसी से बैर न करे ॥ ४७ ॥

(१४६) क्रुध्यन्तन्न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलम्वदेत् ॥
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतान्वदेत् ॥ ४८ ॥

(१४६) अपने ऊपर कोई क्रोध भी करे तो उस पर आप क्रोध न करे अपनी निन्दा भी कोई करे तो आप उस से अच्छी वाणी से बोले सप्त द्वार से निकले हुए वचन को अनृत न बोले ॥ ४८ ॥

(१४७) इन्द्रियाणान्निरोधेन रागद्वेषक्षयेन च ॥
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

(१४७) इंद्रियों का निरोध राग द्वेष का क्षय सब जीवों की अहिंसा इन से मनुष्य मोक्ष के योग्य होता है ॥ ६० ॥

(१४८) यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ॥
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ८० ॥

(१४८) जब परमार्थ से विषयों में दोष भावना करके सब वस्तु में इच्छा से रहित होता है तब इस लोक में और पर लोक में सुख को पाता है ॥ ८० ॥

(१४६) चतुर्भिरपिचैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ॥
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ६१ ॥

(१४६) चारों आश्रमवाले नित्य ही दश लक्षण वाला जो धर्म उसका सेवन यत्न पूर्व करें ॥ ६१ ॥

(१५०) धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनियहः ॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ६२ ॥

(१५०) दश लक्षण कहते हैं १ धृति (अर्थात् संतोष) २ क्षमा (अर्थात् किसी से अपकार पाकर उसका अपकार न करना और बुराई के पलटे भलाई करना) ३ दम (अर्थात् विकार करने वाला विषय पाकर मन में विकार न होने देना) ४ चोरी का त्याग ५ पवित्रता ६ विषयों से इंद्रियों का रोकना ७ शास्त्र आदि का तत्वज्ञान ८ आत्मज्ञान ६ सत्य १० क्रोध का हेतु रहते भी क्रोध न करना ॥ ६२ ॥

॥ सप्तम अध्याय ॥

(१५१) दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ॥
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

(१५१) दंड के विभ्रम से (अर्थात् दंड के योग्य को न दंड देने से और दंड के योग्य जो नहीं है उसको दंड देने से) संपूर्ण वर्ण दोषी हो जायंगे और संपूर्ण मर्यादा टूट जायगी संपूर्ण लोक को क्षोभ होजावेगा सब बिगड़ जावेगा ॥ २४ ॥

---

(१४६) जो लोग हिन्दू कहाते हैं वे नेक अपने मन में सोचें कि इस धर्म के सेवन का जो मनु जी ने दशलक्षण कहके बतलाया है क्या यत्न करते हैं ॥

(१५१) यह अध्याय राजा के वास्ते है ॥

(१५२) त्रैविद्येभ्य स्त्रयीम्विद्या न्दण्डनीतिञ्च शाश्वतीम् ॥
आन्वीक्षिकीञ्चात्मविद्याम्वार्त्तारम्भांश्च लोकतः॥४३॥

(१५२) तीन विद्या के जानने वाले ब्राह्मणों से तीन विद्या और सनातन दण्ड नीति और तर्क विद्या और ब्रह्म विद्या और (धन मिलने के उपाय जानने वाले) लोगों से कृषि वाणिज्य पशु पालन आदि वार्त्ता को सीखे ॥ ४३ ॥

(१५३) इन्द्रियाणाञ्जये योगं समातिष्ठेद्दिवा निशम् ॥
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुम्प्रजाः ॥ ४४ ॥

(१५३) रात्रि दिन इन्द्रियों के जीतने में उद्योग करे जितेन्द्रिय राजा संपूर्ण प्रजा को अपने बश में रख सकता है ॥ ४४ ॥

(१५४) दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ॥
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्ज्जयेत् ॥ ४५ ॥

(१५४) काम से उत्पन्न दश वस्तु और क्रोध से उत्पन्न आठ वस्तु इनको यत्न से वर्जन करे ॥ ४५ ॥

(१५५) कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ॥
बियुज्यतेऽर्थधर्म्माभ्याङ् क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥

(१५५) काम से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से राजा धर्म और अर्थ से रहित होता है और क्रोध से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से तो आप ही नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

---

(१५३) खेद की बात है कि पण्डित लोग दान दक्षिणा मिलने की कथा तो नित्य सुनाया करते हैं परंतु ऐसे २ श्लोक हमारे राजा महाराजों को कभी नहीं समझाते ॥

(१५६) मृगयाक्षौ दिवा स्वप्नः परिवादःस्त्रियो मदः ॥
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥

(१५६) अहेर और पासे का खेलना दिन में सोना पर का दोष कहना स्त्री की सेवा सुरापान नाचना गाना बजाना वृथा घूमना ये दश काम से उत्पन्न हैं ॥ ४७ ॥

(१५७) पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ॥
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

(१५७) किसी का दोष किसी से कहना बल से काम करना कपट से वध दूसरे के गुण को न सहना पर के गुण में दोष निकालना अर्थ को चुराना अथवा देने योग्य वस्तु को न देना वाणी से कठोर बोलना दंड से ताड़न करना ये आठ क्रोध से उत्पन्न हैं ॥ ४८ ॥

(१५८) द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥

(१५८) दोनों गणों का मूल लोभ है उसको यत्न से जीतना इसके जीतने से दोनों गण जीते जाते हैं इस बात को कवियों ने कहा है ॥ ४९ ॥

(१५९) मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥
सोचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१११॥

(१५९) जो राजा मोह से, बिना देखे अपनी प्रजा को पीड़ा देता है सो थोड़े ही काल में प्राण राज्य बांधव सब सहित नाश हो जाता है ॥ १११ ॥

---

(१५६) क्या अच्छी बात होती जो हमारे देश के राजा लोग अपनी बड़ी बड़ी मुहरों में इस श्लोक को खुदवा लेते और सदा उसके अर्थ को चिन्तन करते रहते ॥

(१६०) शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ॥
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ ११२ ॥

(१६०) जिस रीति से शरीर को कष्ट देने से सब इंद्रियों को कष्ट होता है तिसी रीति से प्रजा की पीड़ा से राजा का प्राण पीड़ित होता है ॥ ११२ ॥

॥ अष्टम अध्याय ॥

(१६१) सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यम्वा समञ्जसम् ॥
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥

(१६१) या तो सभा में जाना ही नहीं और जो जाना तो यथार्थ ही बोलना जानके न बोले अथवा विरुद्ध बोले तो पापी है ॥ १३ ॥

(१६२) यच्च धर्म्मो ह्यधर्म्मेण सत्यं यच्चानृतेन च ॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तच्च सभासदः ॥ १४ ॥

(१६२) जहां अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य मारा जाता है और देखने वाले उसको निवारण नहीं करते तहां सभासद भी मारे गये हैं ॥ १४ ॥

(१६३) एक एव सुहृद्धर्म्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ॥
शरीरेण समन्नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥

(१६३) एक धर्म ही मित्र है क्योंकि वह मरे पीछे भी साथ जाता है और बाक़ी तो सब शरीर के साथ ही नष्ट होते हैं । (कदाचित् कहो कि मरे पीछे तो अधर्म भी

---

(१६०) अर्थात् राजा अपनी प्रजा को प्राण समान जाने ॥

(१६१) अर्थात् झूठ कभी न बोले और काम पड़ने पर सच को कभी न छुपावे ॥

साथ जाता है तो वह भी मित्र होना चाहिये तिसका समाधान यह है कि धर्म इष्ट फल देने के लिये जाता है और अधर्म अनिष्ट फल देने के लिये जाता है तो जो इष्ट फल देने के लिये जाय सोई मित्र कहलाता है और भार्या पुत्र आदि तो शरीर के साथ ही छूट जाते हैं इसलिये पुत्र आदि में स्नेह करके धर्म को न मारना ॥ १७ ॥

(१६४) पादोऽधर्म्मस्य कर्तारम् पादः साक्षिणमृच्छति ॥
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

(१६४) अधर्म का चार भाग होता है एक एक भाग को कर्त्ता साक्षी सभासद (अर्थात् मुन्सी मुत्सद्दी इत्यादि) और राजा ये चारों पाते हैं ॥ १८ ॥

(१६५) आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेन्तर्गतम्मनः ॥ २६ ॥

(१६५) आकार इंगित गति चेष्टा भाषित और नेत्र और मुख का विकार इन सब से भीतर का मन जाना जाता है ॥ २६ ॥

(१६६) साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रवन्नार्य्यसंसदि ॥
अवाङ्निरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥

(१६६) जो साक्षी भले लोगों की सभा में सुनने से और देखने से विरुद्ध बोलता है (अर्थात् झूठी गवाही देता है) सो अधो मुख (अर्थात् नीचे मुख) होकर नरक में जाता है और परलोक में स्वर्ग को खोता है ॥७५ ॥

---

(१६६) हमारे पंडितों को चाहिये कि इन श्लोकों को एक बार उन्हें सुना देवें जो हिन्दू कहलाते हैं और नित गवाही देने को कचहरी में जाया करते हैं ॥

(१६७) यत्रानिबद्धोपीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन ॥
पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ ७६ ॥

(१६७) तुम इस में साक्षी हो ऐसा नहीं भी कहा गया है और व्यवहार को उसने देखा है और फिर वह बुला के पूछा जाय तो जैसा देखा है और सुना है तैसा ही कहे ॥ ७६ ॥

(१६८) सत्येन पूयते साक्षी धर्म्मः सत्येन वर्द्धते ॥
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥

(१६८) सत्य से साक्षी पवित्र होता है और सत्य ही से धर्म बढ़ता है इसलिये सर्व वर्ण में साक्षी को सत्य ही बोलना चाहिये ॥ ८३ ॥

(१६६) आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ॥
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

(१६६) आत्मा का आश्रय और साक्षी आत्मा ही है इसलिये मनुष्यों के उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत करो ॥ ८४ ॥

(१७०) मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥

(१७०) पाप करने वाले यह मानते हैं कि हमको कोई नहीं देखता है पर उस पाप को देवता और अपने भीतर रहने वाला ही पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥

(१७१) धनुःशतम्परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥
शम्यायतास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ २३० ॥

(१०१) गौ के चराने के लिये ग्राम के चारों ओर सौ धनुष तक (अर्थात् चार सौ हाथ तक) खेती न करना अथवा हाथ से लाठी फेंकना जहां जाके लाठी गिरे उतनी भूमि की तिगुनी भूमि तक खेती न करना और नगर के चारों ओर तो जो कहा है उसका तिगुना छोड़ना ॥ २३० ॥

(१०२) यः क्षिप्रो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥
यस्त्वैश्वर्य्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ ३१३ ॥

(१०२) दूषित मनुष्य से निषिद्ध भाषण को पाके जो क्षमा करता है सो स्वर्ग में पूजित होता है और जो ऐश्वर्य से क्षमा नहीं करता सो नरक में जाता है ॥ ३१३ ॥

॥ नवम अध्याय ॥

(१०३) पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ॥
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥

(१०३) बाल्यावस्था में पिता युवावस्था में पति वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करते हैं स्त्री स्वतन्त्र (अर्थात् अपने आधीन) होने के योग्य कभी नहीं होती ॥ ३ ॥

---

(१०१) क्या अच्छी बात होती जो हिन्दू ज़मींदार लोग अब भी ऐसा ही करते और अपने गाय बैलों को बढ़ाते क्योंकि खेत में गोबर अधिक पड़ने से अन्न बहुत उत्पन्न होता है और गाय बैलों की बहुतायत से दूध दही घी, और हल गाड़ी चलाने और खेत सींचने का भी सुभीता पड़ता है हमारे देश वासी जो यह बात कहते हैं कि आगे से अब पृथ्वी में अन्न बहुत कम उपजता है उसका बड़ा कारण यही चराई न रहने से गाय बैलों का घट जाना है ॥

(१७४) अर्थस्य सङ्ग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ॥
शौचे धर्म्मेऽन्नपत्त्याञ्च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥ ११ ॥

(१७४) अर्थ का संग्रह व्यय कर्म (अर्थात् घर का ख़र्च) पवित्रता धर्म अन्न बनाना गृह की सामग्री को देखना इन सब कामों में स्त्री को अधिकार देना ॥ ११ ॥

(१७५) पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोटनम् ॥
स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥ १३ ॥

(१७५) मद्यपान दुर्जन संग पति का विरह इधर उधर घूमना अकाल में सोना और के गृह में वास ये छः नारी को दूषण हैं ॥ १३ ॥

(१७६) पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ २६ ॥

(१७६) मन वाणी देह से संयत (अर्थात् दोष रहित) होकर जो स्त्री अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संयोग नहीं करती सो भर्तृ लोक को पाती है और इस लोक में भले लोग उसको साध्वी (अर्थात् पतिव्रता) कहते हैं ॥२६ ॥

(१७७) काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ॥
न चैवैनाम् प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८६ ॥

(१७७) ऋतुमती भी कन्या होकर गृह में मरण तक रहे परंतु उस कन्या को गुणहीन पुरुष को कभी न देवे ॥ ८६ ॥

---

(१७४) आमदनी और ख़र्च का हिसाब स्त्री तभी रख सकेंगी और धर्म्म अधर्म्म का भेद भी तभी जानेंगी जब पढ़ी लिखी होंगी अत एव स्त्रियों को पढ़ना लिखना अवश्य सीखना चाहिये ॥

(१७८) द्यूतं समाह्वयञ्चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ॥
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २२१ ॥

(१७८) द्यूत और समाह्वय इनको राजा अपने राज्य में न होने दे ये दोनों राज्य का नाश करनेवाले हैं ॥ २२१ ॥

(१७९) प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्द्यूतसमाह्वयौ ॥
तयोर्नित्यम् प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान् भवेत् ॥ २२२ ॥

(१७९) ये दोनों प्रकाश चोरी हैं इसलिये इन दोनों के नाश का राजा यत्न करे ॥ २२२ ॥

(१८०) अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥
प्राणिभिः क्रियमाणस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २२३ ॥

(१८०) प्राण रहित (पासे आदि) से दाव लगाके क्रीड़ा करना द्यूत कहलाता है और प्राण सहित (लाल बुलबुल मेढ़े भैंसे घोड़े इत्यादि) से दाव लगा के क्रीड़ा करना समाह्वय कहलाता है ॥ २२३ ॥

(१८१) द्यूतं समाह्वयञ्चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ॥
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २२४ ॥

(१८१) द्यूत और समाह्वय इन दोनों को जो करे और करावे तिस को और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के चिन्ह धारण करनेवाले शूद्र को राजा नाश करे ॥ २२४ ॥

(१८२) द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरम् महत् ॥
तस्मात् द्यूतन्न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २२५ ॥

(१८२) द्यूत बड़ा बैर करने वाला है यह पूर्व काल में भी देखा गया इसलिये बुद्धिमान् पुरुष हंसी के अर्थ भी इसका सेवन न करे ॥ २२५ ॥

---

(१७८) अब तो राजा भी द्यूत और समाह्वय करने लगे ॥

(१८२) आश्चर्य है कि ऐसे ऐसे वचन के रहते भी हिन्दू ब्राह्मण पण्डित और राजा लोग जूआ खेलें ॥

(१८३) समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ॥
स द्वौ कार्षापणौ दद्यान्मेध्यञ्चाशु विशोधयेत् ॥२८२॥

(१८३) विना आपत्तकाल के राजमार्ग (अर्थात् सड़क) में अपवित्र वस्तु (अर्थात् कूड़ा कर्कट इत्यादि) डाले सो दो कार्षापण दंड देवे और अपवित्र वस्तु जो डाली है उसे उठा कर शीघ्र राज मार्ग से बाहर ले जावे ॥ २८२ ॥

(१८४) आरभेतैव कर्म्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ॥
कर्म्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ ३०० ॥

(१८४) काम करते करते थक जावे तो फेर भी कामों का आरंभ करता ही रहे क्योंकि काम करनेवालों की सेवा लक्ष्मी करती है ॥ ३०० ॥

(१८५) कृतं चेतायुगञ्चैव द्वापरङ्कलिरेव च ॥
राज्ञो वृत्तानि सर्व्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥

(१८५) कृत चेता द्वापर कलि ये ही चारों युग हैं सो नहीं किन्तु जैसा आचरण राजा करे तैसा युग होता है (अर्थात् राजा ही युग है) ॥ ३०१ ॥

---

(१८३) जो सरकार अंगरेज़ बहादुर ने इस वचन पर ध्यान धरा होता तो फिर कोई नगर हिन्दुस्तान में मैला और अपवित्र न रहता ॥

(१८४) अर्थात् काम करने से कभी न घबरावे चाहे वह सिद्ध हो चाहे न हो काम करता ही रहे यदि हमारे देशवाले इस वचन के अनुसार चलते और आलस्यी और निरुद्यमी न हो जाते तो आज इस दशा को क्यों पहुंचते ॥

(१८५) अर्थात् जहां जब राजा अच्छा है तहीं तब सत युग वर्त्तता है ॥

(१८६) मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानान्तान्तवस्य च ॥
गन्धानाञ्च रसानाञ्च विद्याद्घर्घबलाबलम् ॥ ३२६ ॥

(१८६) वैश्य, मणि मोती मूंगा लोहा सूत गंध रस इन सभों का देश काल समझ के न्यून अधिक मोल जाने ॥ ३२६ ॥

(१८७) बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥
मानयोगञ्च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥

(१८७) खेत का दोष और गुण बीज बोना प्रस्थ द्रोण आदि मान योग मासा तोला आदि तुला योग इन सभों का जानने वाला होवे ॥ ३३० ॥

(१८८) सारासारञ्च भाण्डानान्देशानाञ्च गुणागुणान् ॥
लाभालाभञ्च पण्यानाम्पशूनाम्परिवर्द्धनम् ॥ ३३१॥

(१८८) भाण्ड (अर्थात् पाच) का सार असार देशों का गुण अगुण बेचने योग्य वस्तुओं का लाभ अलाभ पशुओं का बढ़ना इन सब बातों को जाने ॥ ३३१ ॥

(१८९) भृत्यानाञ्च भृतिम्विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३३२ ॥

(१८९) मज़दूरों की मज़दूरी मनुष्यों की नाना प्रकार की भाषा द्रव्यों की स्थिति के उपाय और बेचना मोल लेना इन सब बातों को जाने ॥ ३३२ ॥

---

(१८६) यदि हमारे देश के बनिये महाजन दुकान्दार मनुजी के इन सब वचनों को मानें और अपने लड़कों को ये सब बातें और नाना प्रकार की भाषा सिखलावें तो फिर क्यों न धन धान्य से पूर्ण हो जावें परंतु जब उन्हों ने अपने ही धर्म शास्त्र से बिरुद्ध काम करना और लड़कों को मूर्ख रखना स्वीकार किया तो फिर बिपत और दरिद्र का मुख देखकर क्यों न बिलपें ॥

(१९०) शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहङ्कृतः ॥
ब्राह्मणाश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ ३३५ ॥

(१९०) पवित्रता बड़ों की सेवा कोमल बोलना अहंकार न करना ब्राह्मणों के नित्य आश्रय रहना ये कर्म शूद्रों के उत्तम जाति देने वाले हैं ॥ ३३५ ॥

॥ दशम अध्याय ॥

(१९१) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥

(१९१) अहिंसा सत्य चोरी न करना शौच इन्द्रियों का रोकना यह संक्षेप धर्म चारों वर्णों का है ऐसा मनु जी ने कहा ॥ ६३ ॥

॥ एकादश अध्याय ॥

(१९२) ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥
महांति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैस्सह ॥ ५५ ॥

(१९२) ब्रह्महत्या सुरापान चोरी गुरुपत्नी से संभोग ये चार महापातक हैं महापातकी के साथ संसर्ग करना यही पांचवां महापातक है ॥ ५५ ॥

(१९३) अनृतञ्च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५६ ॥

(१९३) नीच जाति होके हम बड़ी जाति हैं ऐसा झूठ बोलना राजा के समीप (जिस में उसका मरण हो) ऐसा किसी का दोष कहना गुरु से झूठ बोलना ये सब ब्रह्म हत्या के समान हैं ॥ ५६ ॥

---

(१९०) अर्थात् इन कर्मों को जो शूद्र भी करे तो उसे उत्तम जातिवालों के समान माना चाहिये ॥

(१९४) उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुन्तथा ॥
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ ८९ ॥

(१९४) साक्षी होके झूठ बोलने में गुरु को मिथ्या दोष लगाने में स्त्री के वध में और मित्र के वध में (ब्रह्म हत्या का व्रत करना) ॥ ८९ ॥

॥ द्वादश अध्याय ॥

(१९५) वाग्दण्डोथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ॥
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ १० ॥

(१९५) जिस की वाणी मन शरीर ये सब क्रम से निषिद्ध कथन असत्संकल्प निषिद्धव्यापार इनका त्याग किये हुए हैं वही त्रिदण्डी कहलाता है क्योंकि दमन से दंड है तो जिसने तीनों से तीनों वस्तु का दमन किया वही त्रिदण्डी है ॥ १० ॥

(१९६) त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ॥
कामक्रोधौ तु संयम्य ततस्सिद्धिन्नियच्छति ॥ ११ ॥

(१९६) संपूर्ण जीवों में इन तीनों दंडों को (अर्थात् मनो दंड काय दंड वाणी दंड) को स्थापन करके और काम क्रोध को रोक के सिद्धि को पाता है ॥ ११ ॥

---

(१९४) अर्थात् झूठी साक्षी देना इत्यादि पाप ब्रह्महत्या के बराबर हैं ॥

॥ इति ॥